WORKING PAPER No. 184

उत्तरांचल क्षेत्र में वन पंचायतों की प्रबन्धकीय सफलता का एक अवलोकन

प्रतापसिंह गढ़िया

गिरि विकास अध्ययन संस्थान
सेक्टर 'ओ', अलीगंज हाउसिंग स्कीम
लखनऊ – 226 024

2003
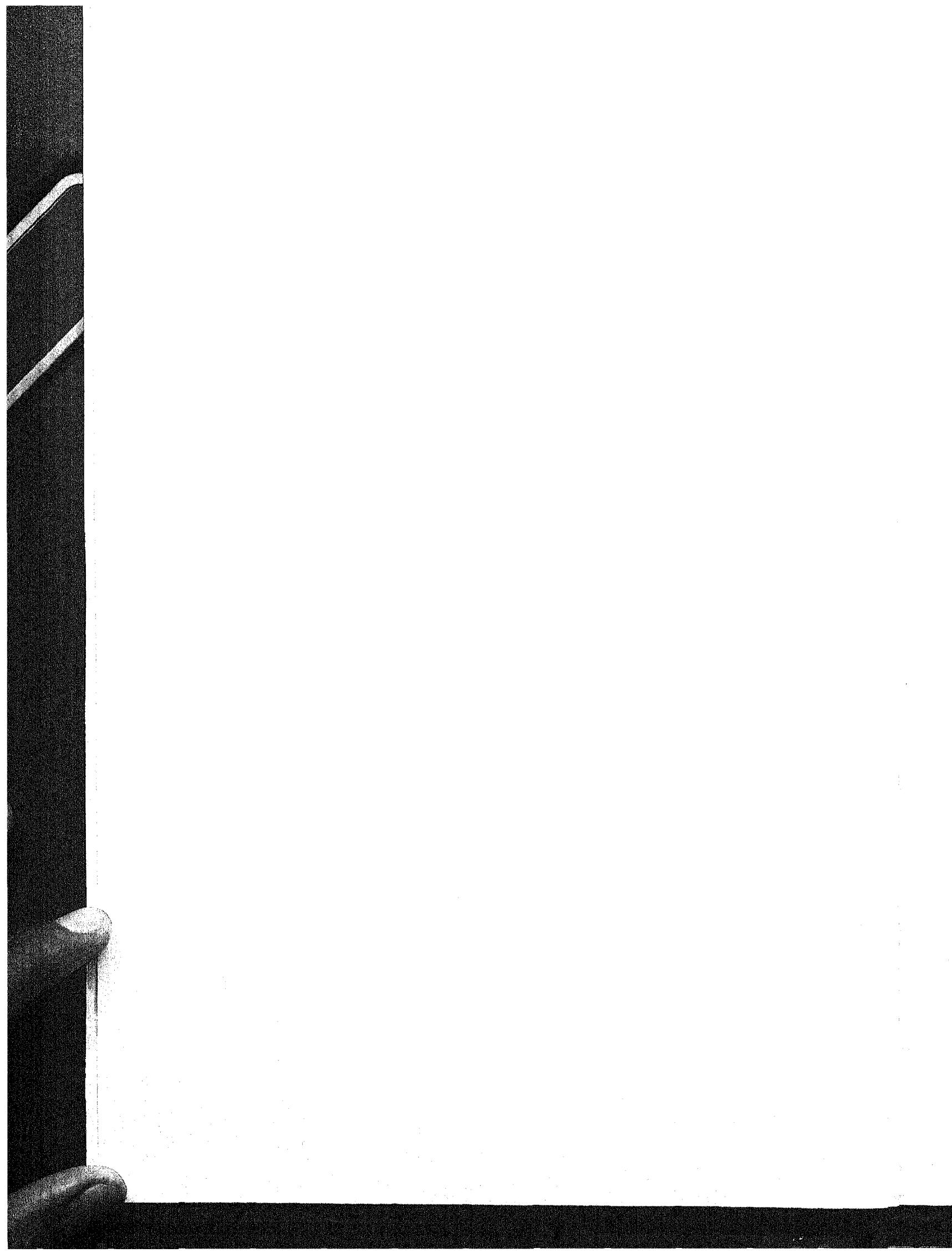
उत्तरांचल क्षेत्र में वन पंचायतों की प्रबन्धकीय सफलता का एक अवलोकन

डा० प्रताप सिंह गढ़िया *

किसी भी देश, प्रदेश व क्षेत्र विशेष के आर्थिक विकास को अनेक आर्थिक व अनार्थिक तत्वों द्वारा प्रभावित किया जाता है जिसमें प्राकृतिक संसाधन, मानव संसाधन, पूंजी निर्माण, तकनीकी प्रगति, अच्छे उद्यमी व संगठन जैसे आर्थिक तत्व तथा सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व अर्न्तराष्ट्रीय परिस्थितियां आदि अनेक अनार्थिक तत्व शामिल है। इन सभी तत्वों में कुछ का वैज्ञानिक तरीके से विदोहन व कुछ में आपसी सामन्जस्य रखकर ही संतुलित विकास की कामना की जा सकती है लेकिन आज मानव संसाधन की विकास की दौड़ व होड़ ने प्राकृतिक संसाधनों का इस तरह से विदोहन कर दिया है कि मानव अस्तित्व ही खतरे में पड़ते जा रहा है। अतः यह सकारात्मक होगा कि मानव जीवन जिन प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित है उनको संरक्षित किया जाय और उसके प्रबन्ध व रख रखाव की तरफ ध्यान दिया जाय। यह कार्य केवल सरकारी नियंत्रण के माध्यम से ही सम्भव नहीं होगा क्योंकि विभिन्न सरकारी विभागों की असफलताएं सर्वविदित है, विशेषकर ग्रामीण समाज में रहने वाले लोगों की सहभागिता के आधार पर ही यह कार्य हो सकता है।

हमारे देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के रख रखाव व संरक्षण के लिये बुद्धिजीवी, योजनाकार व स्वयंसेवी संगठन समय–समय पर अपने सुझाव व राय देते रहे हैं लेकिन बिना स्थानीय व लोक आधारित संस्थाओं के योगदान के प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की बात करना भी बेईमानी होगी क्योंकि जिनके उपयोग के लिये प्राकृतिक संसाधन है उनका इनके उपयोग व संरक्षण के लिये क्या दृष्टिकोण है? क्या लोक आधारित संस्थायें इन संसाधनों के प्रबन्ध में सक्षम हैं? कौन से कारण है जो प्राकृतिक संसाधनों के विनाश के लिये जिम्मेदार हैं? और किन कारणों से ये संस्थायें सफलता व असफलता की ओर अग्रसर हो रहें हैं? आदि बातों को ग्राम–गडेरा की वन पंचायत के माध्यम से खोजने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्धेश्य वन पंचायत के गठन की प्रक्रिया तथा पंचायती वनों पर किये गये अतिक्रमण व निजीकरण से गरीबों व महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभावों को उजागर करने के साथ–साथ वन पंचायत सरपंच तथा सदस्यों की विवशता व कर्तव्यहीनता की स्थिति को दर्शाना है। लेख को मुख्यतया वर्तमान व भूतपूर्व वन पंचायत सदस्यों तथा गांव के शिक्षित व बुजुर्ग लोगों से पूछताछ कर एवं सिविल व वन पंचायत क्षेत्र का भ्रमण करके तैयार किया गया है। प्रस्तुत लेख के प्रारम्भ में वन पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को तथा अग्रिम भाग में ग्राम गडेरा की वन पंचायत का मूल्यांकन किया गया है।

---

* गिरि विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ।

वन पंचायत की उत्पत्ति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

सामान्यतया आजादी से पूर्व उत्तर प्रदेश के हिमालय क्षेत्र में किये गये वन विदोहन व ब्रिटिश हूकूमत के द्वारा समय–समय पर बनाये गये वन अधिनियमों व प्राविधानों के साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जहां आज़ादी से पूर्व अंग्रजों की दृष्टि वनों से अधिक से अधिक राजस्व कमाने की रही, वहीं दूसरी ओर रेलवे प्रसार के प्रारम्भिक दिनों में वनों के अत्यधिक कटान की शुरूआत हुई। सन 1864 में वन विभाग की स्थापना भी इसी उद्धेश्य से की गयी कि वन विभाग रेलवे स्लीपर बनाने के लिये मज़बूत व टिकाऊ लकड़ी जैसे–साल, टीक व देवदार के वन क्षेत्रों का पता लगाये।

ब्रान्डिस (1879) ने लिखा है कि सन् 1865 से 1878 के बीच लगभग 13 लाख देवदार के स्लीपर यमुना घाटी से निर्यात किये गये। देवदार के इन वनों में लगातार व तेज़ी से हुए कटान ने सरकार को यूरोप से स्लीपर आयात करने को मजबूर कर दिया लेकिन धीरे धीरे आयातित स्लीपरों की जगह देशी स्लीपरो पर जोर दिये जाने के कारण वन विभाग द्वारा हिमालयी चीड़ के इस्तेमाल पर बल दिया गया। गुहा (1986) ने समाइथीज व स्टेविंग को उद्वरित करते हुए लिखा है कि स्लीपरों के लिये वनों का व्यापारीकरण होने के कुछ वर्षो बाद हिमालयी क्षेत्र के वन आर्थिक वरदान हो गये। सन् 1890 में चीड़ के पेड़ों से लीसा टिपान प्रारम्भ हुआ और 1920 में जब बरेली में 64000 कुन्तल लीसा तथा 240000 गैलन तारपीन उत्पादन की क्षमता (जिसे चार गुना तक बढ़ाया जा सकता था) वाली फैक्ट्री का निर्माण हुआ तो उत्पादन देश की आवश्यकता से अधिक होने लगा अतः लीसे व तारपीन को इग्लैण्ड तथा सुदूर पूर्व को निर्यात करने पर विचार होने लगा।

जहां एक ओर हिमालय क्षेत्र के वनों का व्यापारिक दृष्टि से विद्रोहन होने लगा वहीं दूसरी ओर स्थानीय लोगों के वनों पर अधिकार सीमित होने लगे। इस सम्बन्ध में गुहा (1986) ने ग्रामीणों के वनाधिकारों में निरन्तर कमी को चार अवस्थाओं में देखने का प्रयास किया है। पहली अवस्था – 1815 से 1878 के बीच भाभर के साल के वनों का दोहन किया और पहाड़ी क्षेत्र के वन सुरक्षित रहे। नैनीताल के आस पास के वनों को 1850 तथा रानीखेत और अल्मोड़ा के वनों को क्रमशः 1873 तथा 1875 में सीमांकित किया गया। दूसरी अवस्था – 1878 से 1893 के बीच पहली अवस्था के वनों को 1878 के वन अधिनियम के अर्न्तगत आरक्षित घोषित किया गया साथ ही लौह कम्पनियों को कुछ वन उपयोग के लिये दिये गये और अल्मोड़ा व गढ़वाल क्षेत्र के अनेक क्षेत्रों को आरक्षित या संरक्षित वन घोषित किया गया। तीसरी अवस्था – 17 अक्टूबर, 1893 में अधिनियमानुसार समस्त रिक्त भूमि जो ग्रामीणों के नाप भूमि के अर्न्तगत नहीं थी या पहले आरक्षित (रिजर्व) वनों को संरक्षित वन (प्रोटेक्टेड) घोषित किया गया हांलाकि सैक्सन 28 के अनुसार आवश्यक जांच पड़ताल नहीं की गयी। इस प्रकार जिला संरक्षित वन अब वन्य क्षेत्र से बाहर बर्फीले शिखरों, घाटियॉ, तालाबों, मंदिरों की भूमि, चारागाहों, सडकों, इमारतों तथा दूकानों तक फैल गयी। 2 अक्टूबर, 1894 को साल, देवदार तथा चीड़ सहित आठ पेड़ प्रजातियां आरक्षित की गयी। ईधन व चारे के उपयोग तथा इमारती लकड़ी के सम्बन्ध में नियम बनाये

गये और ग्रामीणों द्वारा किसी भी प्रकार के वन उत्पादों का व्यापार निषिद्व कर दिया गया। सन् 1903 में कुमायूं के जिला संरक्षित वनों को दो भागों – (अ) बन्द सिविल वन – जिन्हें सरकार ने पुर्नजन्म और संरक्षण के लिये आवश्यक समझा (ब) खुले सिविल वन – जिनमें 1893 के अधिनियम के तहत ग्रामीण अपने अधिकारों को प्रयोग कर सकते थे। चौथी अवस्था के अनुसार सन् 1911 के निर्णय के अनुसार जिला संरक्षित वनों से एक सुरक्षित वन क्षेत्र बनाने का निर्णय लिया गया ग्रामीणों को मकान व कृषि उपकरण हेतु वनाधिकारियों को पहले से बताना पड़ता था तभी वनाधिकारी विभिन्न प्रणालियों की एक सूची से स्वीकृत करता था।

शास्त्री (1993) ने लिखा है कि सन 1865 तक हिमालय क्षेत्र के स्थानीय लोगों ने वन उत्पादों के उपयोग में अप्रतिबन्धित अधिकारों का उपयोग किया लेकिन 1865 में अधिनियम और 1878 में उसमें किये गये वैधानिक व प्रशासनिक संशोधनों ने लोगों के वन अधिकारों में काफी कटौती कर दी और लोगों के द्वारा वन अधिकारों के लिये आन्दोलन शुरू हो गये परिणामस्वरूप स्थानीय नेतृत्व ने सन् 1916 में कुमायूँ परिषद की स्थापना कर वन अधिकार से सम्बन्धित समस्याओं से निपटने के लिये स्थानीय लोगों को आन्दोलित कर दिया, कुमायूँ परिषद के आन्दोलन से विचलित होकर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने कुमायूँ कमिश्नर के सभापतित्व में सन् 1921 में फारेस्ट ग्रीवान्स कमेटी की स्थापना की (वल्लभ एवं सिंह 1988) उस कमेटी ने कुमायूँ में वनों को वाणिज्यक व अवाणिज्यक दो भागों में विभक्त किया और अवाणिज्यक वनों का प्रबन्ध वन पंचायत के माध्यम से करने का सुझाव दिया। इसके साथ–साथ वन पंचायतों के लिये राजस्व विभाग के द्वारा कानून बनाने का सुझाव भी दिया गया इस सुझाव को दृष्टिगत रखते हुए सन् 1931 के बाद पर्वतीय क्षेत्र में वन पंचायतों के गठन का कार्य प्रारम्भ हुआ यद्यपि वन पंचायतों से पूर्व उत्तरांचल के कुछ गांवों में लट्ठ पंचायतों (आपसी सलाह मशविरे से बनायी गयी पंचायतें) ने भी वनों को बचाने में सहयोग दिया लेकिन इनका कोई कानूनी रूप न होने के कारण ग्रामीण वनों के लोक प्रबन्ध की शुरूआत 1931 के बाद ही मानी जा सकती है।

वन पंचायतों की वर्तमान स्थिति :

सन् 1972 व 1976 में वन पंचायत अधिनियम में परिवर्तन किया गया और अपने कार्य क्षेत्र में उपलब्ध पेड़ों को कटने से रोकना, पंचायत वन से उपलब्ध वन उत्पादों को उस पर अधिकार रखने वाले लोगों को बराबर बॉटना, वन पंचायत सीमा निर्धारण व उसके लिये पिलर्स बनाना ताकि अतिक्रमण रोका जा सके तथा जिलाधिकारी व परगनाधिकारी के आदेशों को लागू करने जैसे दायित्व पंचायत को सौपें गये इसके साथ–साथ वन पंचायत में गिरे पेड़ों तथा घास की बिक्री, अपराधी को 500 रूपये तक डण्ड, हथियारों की जब्ती, पंचायत वन में भटके जानवरों को बन्द करने व जब्त इमारती लकड़ी को बेचने का अधिकार पंचायत को दिये गये हैं।

साधारणतया पंचायती व सिविल सोयम वन ही है जो ग्रामीण लोगों को शुद्व जल, जलाऊ लकड़ी, चारा, खाद्य सामग्री और इमारती लकड़ी उपलब्ध कराते हैं। यह पंचायती वन ही है जिनके माध्यम से लोगों के अन्दर संयुक्त प्रबन्ध

की भावना विकसित करने, लोगों को बराबरी का हक देने, जो व्यक्ति वनों में नुकशान करते है उनको दण्ड देने, ग्राम स्तर पर प्रजातांत्रिक संस्थाओं का ज्ञान देने तथा पर्यावरण व अर्थशास्त्र का एकीकरण किस प्रकार किया जाय आदि बातों की शिक्षा पंचायती वनों से ही प्राप्त होती है।

सम्पूर्ण उत्तरांचल क्षेत्र में आजतक कुल 4877 वन पंचायतों की स्थापना हो चुकी है जिनमें से 38.0 प्रतिशत वन पंचायतें गढ़वाल मण्डल व शेष कुमायूँ मण्डल में विद्यमान है। कुल मिलाकर सम्पूर्ण उत्तरांचल के लगभग 32.0 प्रतिशत गांवों में वन पंचायतों का विधिवत गठन हुआ है।

उत्तराखण्ड क्षेत्र में वन पंचायतों की संख्या :

जिला/मण्डल	गांवों की संख्या	वन पंचायतों की संख्या	कुल गांवो से प्रतिशत
चमोली	1569	658	42.0
उत्तरकाशी	678	26	3.8
पौड़ी गढ़वाल	3205	947	29.6
टेहरी गढ़वाल	1959	45	2.3
देहरादून	746	159	21.3
गढ़वाल मण्डल	**8157**	**1835**	22.5
अल्मोड़ा	3024	1770	58.5
पिथौरागढ़	2186	1067	48.8
नैनीताल	1799	205	11.4
कुमायूं मण्डल	**7009**	**3042**	43.4
उत्तरांचल	**15166**	**4877**	32.2

स्त्रोत : वन पंचायत प्रोबलम्स एण्ड स्टे्टस सेन्टर फॉर डेवलपमेंट स्टडीज़, यू0 पी0 एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन नैनीताल, 1997, पृष्ठ 3.

उत्तरांचल में 34,38,767 हैक्टर भूमि वनों के अधीन है और सिविल सौयम व पंचायती वनों का क्षेत्रफल लगभग 10,38,163 हैक्टर है जो सम्पूर्ण वन क्षेत्र का 30.2 प्रतिशत है।

यद्यपि उत्तरांचल क्षेत्र में विद्यमान सिविल सोयम व पंचायती वन लोगों के दिन प्रतिदिन की आवश्यकतायें की पूर्ति में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं लेकिन वर्तमान समय में सिविल सोयम वन के जो आंकड़े उपलब्ध है और जो वास्तव में क्षेत्र में उपलब्ध है उनमें काफी भिन्नता आ गयी है, इसके अलावा सिविल वनों में लोगों की खुली पहुँच होने, सिविल वनों से सम्बन्धित उपलब्ध नक्शों में वनों का सीमांकन पीढ़ियाँ पहले होने तथा ये वन राजस्व विभाग के अधीन होने के कारण राजस्व विभाग वाले वरीयता क्रम में इनकी तरफ ध्यान अन्त में देते हैं क्योंकि राजस्व वालों को पुलिस व न्याय का कार्य भी करना पड़ता है इसके अलावा निजी व्यक्ति या संस्था द्वारा उनके बचाव व संरक्षण की सुधि न लेने के कारण सिविल

वन अतिक्रमण के शिकार होते गये और जहॉ वन विभाग द्वारा सिविल वनों में वनीकरण किया, वहॉ धनाभाव के कारण पौधों की देखभाल करने वाला न होने के कारण यह योजना भी सफल होती नज़र नहीं आती है।

सिविल वनों की तरह पंचायती वन भी ज़िले में ज़िलाधिकारी व परगनाधिकारी के अधीन होते है लेकिन ये दोनों अधिकारी ज़िले की कानून व्यवस्था या न्याय व्यवस्था में इतने व्यस्त होते हैं कि ये लोग वन पंचायतों की तरफ ध्यान नहीं दे पाते है (पाण्डे 1997) राजस्व विभाग का प्रशासनिक व वन विभाग का पंचायती वनों पर तकनीकी नियंत्रण होने से कार्यो में विलम्ब होता है। वर्तमान समय में कुमायूँ क्षेत्र में 9 वन पंचायत इन्सपेक्टर है उनको 2231.3 वर्ग कि0 मी0 वन क्षेत्र में शारीरिक रूप से भ्रमण व निरीक्षण करना असम्भव है। वन पंचायतों के कोष पर ज़िलाधिकारी का नियंत्रण होता है जिसको लघु बचत का लक्ष्य प्राप्त करने में लगाया जाता हैं जिन पंचायतों के पास चौड़ी पत्ती वाले वन है उनके विकास एवं संरक्षण के लिये वन पंचायतों के पास धन की कमी रहती है। वन पंचायत सदस्य व वन पंचायत इंस्पेक्टर भी स्वयं वनीकरण, भूमि व जल संरक्षण, संसाधनों का प्रबन्ध व तकनीकी आदि के सम्बन्ध में अनभिज्ञ रहते हैं। उत्तरांचल क्षेत्र में स्त्रियां ही है जो चारा, ईधन व जल एकत्रण के कार्य के साथ कृषि व घरेलू कार्यों का निर्वहन करती है लेकिन वर्तमान वन नियमों व अधिनियमों में उनको कोई स्थान नहीं दिया गया है दूसरी तरफ वन पंचायतों के कुशल प्रबन्ध के लिये कार्य योजना बनाने का अधिकार वन विभाग को है लेकिन वन विभाग अभी तक योजना बनाने में असमर्थ रहे हैं।

अध्ययन क्षेत्र:

ग्राम सभा–गडेरा में स्थित वन पंचायत बागेश्वर जनपद के एक पिछड़े विकास खण्ड कपकोट के मुख्यालय से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। गांव गडेरा जिसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 1810 हेक्टर है उसमें कुल 188 परिवारों के 1017 लोग निवास करते हैं, जिसमें से 23.0 प्रतिशत लोग अनुसूचित जनजाति के है। ग्राम गडेरा कमशः फुलई, गडेरा व जालेख तीन राजस्व गांवों में विभक्त है। तीनों राजस्व गांवों से मिलकर बने गांव गडेरा के 24.0 प्रतिशत भाग में खेती, 22.0 प्रतिशत भाग में पंचायती वन वन 38.0 प्रतिशत भाग में कृषि योग्य बेकार भूमि व सिविल वन तथा लगभग 16.0 प्रतिशत भूभाग कृषि के अयोग्य है, जो राजस्व विभाग के रिकार्ड में कई दशाब्दियों से दर्शाये जाते रहे हैं। ग्राम गडेरा में वन पंचायत की स्थापना सन् 1952 के बाद की गयी और वर्तमान समय तक अपना अस्तित्व बनाये हुए है।

वन पंचायत का गठन:

ग्राम सभा स्तर पर सरपंच वन पंचायत के प्रबन्ध के लिये उत्तरदायी शासक है गांव में पंचों व सरपंच के चुनाव के लिये सर्वप्रथम एक बैठक का आयोजन किया जाता है उस बैठक में तोक (मोजो) के अनुसार पंचायत सदस्यों को

नामांकित किया जाता है। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सभी जाति व धड़ों का प्रतिनिधित्व हो, पंचों को निर्विरोध व हाथ उठाकर सर्व सहमति से चुना जाता है। ग्राम गडेरा में गतवर्ष 7 पंच चुने गये और इन पंचों में से ही एक सदस्य को सरपंच चुना गया जिसका चुनाव पंच करते हैं। सामान्य तौर पर वन पंचायत का कार्यकाल 5 वर्ष के लिये होता है। सरपंच जिलाधिकारी द्वारा नामांकित वन पंचायत इंस्पेक्टर की निगरानी में अपने कार्यों का निर्वहन करता है। ग्राम गडेरा की वन पंचायत में आज तक स्त्रियों का प्रतिनिधित्व नहीं रहा है। जबकि वनों का उपयोग व उनमें कार्य करने वाली स्त्रियां ही है।

पंचायती वन पर अतिक्रमण व विदोहन की प्रक्रिया:

पंचायती वन व भूमि पर किये जा रहे अतिक्रमण व अंधाधुंध कटान का विवरण देने से पूर्व गांव में उपलब्ध सिविल सोयम वन व भूमि पर हुए अतिक्रमण की पृष्ठभूमि भी इस भाग में देना उचित होगा क्योंकि पंचायती भूमि व वनों के अन्धाधुंध विदोहन की शुरूआत सिविल सोयम वनों से ही हुई थी।

गांव में पर्याप्त जल, घने जंगल व उसमें पाये जाने वाले विभिन्न चारे वाली वनस्पतियों के कारण बाहर के गांवों से आकर लोगों ने गांव गडेरा को बसाया था यह बहुजन से मुखर होता है कि साठ के दशक तक ग्राम वन सम्पदा के क्षेत्र में सम्पन्न था। अंग्रेजों के जमाने से चले आ रहे प्रधानों (मालगुजारी वसूलने वाले व्यक्ति) ने सर्वप्रथम गांव के गरीबों, हरिजनों व भूमिहीनों को आसामी बनाकर गांव के सिविल भूमि पर अतिक्रमण करवाने की शुरूआत की। क्योंकि प्रधान लोग इनसे बेगारी लेते थे गांव के इन आसामी लोगों की देखा –देखी में अन्य ग्रामीणों ने भी ग्राम समाज अथवा सिविल सोयम की भूमि पर अतिक्रमण कर उसमें धेरवाड़ करना प्रारम्भ कर दिया।

सन् 1960 के दशक में जब मध्य हिमालय क्षेत्र में जमीन का बन्दोबस्त चला तो अंग्रेजी शासन से पूर्व या पश्चात सिविल भूमि पर जिन ग्रामीण लोगों ने घेरवाड़ कर रखा था उनको कब्जे के आधार पर लीज पट्टे दिये गये और उस कब्जे वाली भूमि को वर्ग–5 की भूमि कहा जाने लगा। गढ़िया (1996) जब सिविल सोयम की भूमि पर अवैध कब्जा करने पर पट्टे दिये गये तो गांव के अन्य लोगों ने गांव की शेष बची भूमि व वनों पर अतिक्रमण कर उसमें उपलब्ध चारे की पत्ती वाले वृक्षों, इमारती लकड़ी व बड़े वृक्षों तथा जलाऊ लकड़ी के लिये छोटी–2 वनस्पतियों का विदोहन करना शुरू कर दिया और जिस अतिक्रमण वाली भूमि पर खेती करने की सम्भावना थी उसमें खेती होने लगी।

सन् 1965 के भारत–पाक युद्ध के दौरान सेना में भर्ती हुए और 15–20 वर्ष तक सेना में नौकरी करने पर गांव लौटा सैनिक गांव की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्थिति की अनभिज्ञता एवं मात्र 200–400 रूपया माहवार पेंशन पाकर अपने को गांव के सामाजिक व आर्थिक कार्यो में भागीदारी निभाने में पिछड़ा व ठगा सा महसूस करता था और

अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये भूतपूर्व सैनिक भी सिविल भूमि व वनों पर अतिक्रमण करने को आतुर हुए ताकि वे उस भूमि में कृषि करके अपनी आमदनी बढ़ा सकें (गढ़िया, 1984)।

ग्राम सभा गडेरा के राजस्व गांव जालेख में चीड़ का घना जंगल था सन् 1970 से 1975 तक गांव को मात्र 1200 रूपया वार्षिक रायल्टी देकर निजी ठेकेदार ने अवैज्ञानिक तरीके से लीसा टिपान किया जिस कारण घने जंगल के पेड़ सूखते गये गांव वालों को सूखे पेड़ काटने की इज़ाजत होने के कारण लोगों ने सिविल जंगल से सूखे पेड़ों के साथ–2 कच्चे चीड़ के पेड़ों को भी काटना प्रारम्भ कर दिया। इसके अलावा गांव गडेरा के जालेख व गडेरा राजस्व गांवों को इमारती लकड़ी की आपूर्ति इसी वन से होती थी वर्तमान समय में इस वन में चीड़ का एक भी बड़ा पेड़ उपलब्ध नहीं है। ग्रामवासियों के द्वारा चारों तरफ से सिविल भूमि पर अतिक्रमण कर खेती व घास पालने का कार्य किया जा रहा है। वर्तमान में सिविल भूमि में जो वनस्पति (चीड़ के पौधे) उग आती है उसको काटकर ईंधन व अन्य उपयोग में ला रहे हैं।

प्रारम्भ से ही गांव की सिविल भूमि में बॉज व फल्यांठ के वृक्ष बहुतायत रूप में विद्यमान थे। ये वृक्ष न केवल खेती के औजार बनाने के लिये उपयोगी होते है वरन् ईंधन व जाड़ों में कमरा गरम करने के लिये भी इनका उपयोग किया जाता था क्योंकि इनकी लकड़ी में पूरा जलने तक आग टिकी रहती थी इसके साथ–साथ जानवरों के चारे के रूप में भी बांज व फल्यांठ की पत्तियों का उपयोग किया जाता है। जैसे–2 गांव की सिविल भूमि पर अतिक्रमण होता गया तो गांव के सिविल वन से बांज व फल्यांठ का अन्धाधुंध कटान किया गया वर्तमान समय में मात्र निजीकरण वाली सिविल भूमि पर ही उपरोक्त वृक्षों को देखा जा सकता है जबकि अन्य सिविल भूमि पर ये महत्वपूर्ण वृक्ष लुप्तप्राय: हो चुके है।

सिविल भूमि में सरकार द्वारा हरिजनों व भूमिहीनों को पट्टा देने पर भी सिविल भूमि व वनों के अतिक्रमण को प्रोत्साहन मिला है क्योंकि गांव की बस्ती से दूर होने के कारण कुछ गरीब हरिजन उसमें कब्जा नहीं कर पाये तो कुछ दबंग लोगों ने हरिजनों को दी गयी भूमि के चारों तरफ अपना कब्जा कर लिया ताकि पट्टेदार हरिजन अपने पट्टे की जमीन से अधिक जमीन कर कब्जा न कर सके और कुछ जगहों पर आवण्टी लोगों के द्वारा अपना कब्जा न लेने पर अन्य लोगों ने उस भूमि पर कब्जा कर लिया।

यद्यपि सिविल भूमि व वनों पर अतिक्रमण व निजीकरण की शुरूआत सिमलात (नाप भूमि से जुड़े भाग) की भूमि से हुई लेकिन यह सिलसिला लगातार चलते रहा है। आज यद्यपि राजस्व विभाग के आंकड़ों में सिविल भूमि व वन विद्यमान है लेकिन व्यवहार में गांव की समस्त सिविल भूमि का निजीकरण हो गया है और लोग उसमें या तो खेती कर रहे है या फिर घास व निजी वन पाले हुए है।

सिविल सोयम वन व भूमि पर अतिक्रमण व निजीकरण के लिये अंग्रेजी शासन से चले आ रहे प्रधान, सरकार द्वारा अवैध कब्जे के पट्टे, भूतपूर्व सैनिकों की आर्थिक दुर्दशा, गरीब हरिजनों व भूमिहीनों को भूमि वितरण तथा पशु चारे व कमरा गरम करने के लिये चारे वाले वृक्षों का कटान आदि कारण उत्तरदायी रहे हैं जबकि गांव की ग्राम सभा को इसके रख–रखाव की प्रथम कड़ी के रूप में देखा जाता है जो इन वनों की सुरक्षा करने में असफल रहे। सिविल वनों की तरह पंचायती वनों में हो रहे अतिक्रमण की प्रक्रिया व उसके प्रभावों का विवरण अगले भाग में दर्शाया गया है।

1. सिविल भूमि व वनों के निजीकरण के बाद बढ़ती जनसंख्या का दवाव पंचायती वनों की ओर बढ़ना स्वाभाविक है इसी कारण सिविल भूमि व वनों की तरह लोगों ने सर्वप्रथम अपनी निजी या अतिक्रमित सिविल भूमि के सिमताल से जुड़े वन पंचायत भूमि पर अतिक्रमण करना प्रारम्भ किया और कुछ भाग में खेती व कुछ भाग में अपने निजी वन लगा लिये है।
2. साधारणतया गांव में बरसात के मौसम में लौकी, तुरई, छिछण्डा, ककड़ी क करेला जैसे सब्जियों को उगाया जाता है जिसके बेलों को सहारा देने के लिये छोटे पेड़ों व टहनियों की आवश्यकता होती है। गांव का प्रत्येक परिवार कम से कम 4–5 पेड़ चीड़ व अन्य वनस्पतियों के पेड़ इस कार्य के लिये काट लाते हैं। कुल मिलाकर गांव के 188 परिवारों द्वारा लगभग 8–9 सौ पेड़ सब्जियॉ के बेल को सहारा देने के लिये काटे जाते हैं।
3. उत्तरांचल में बरसात के मौसम में घास पालकर उसको अक्टूबर–नवम्बर में काटकर इकट्ठा करने के अलावा धान के पुआल को सूखाकर उसको चीड़ व अन्य पेड़ों के चारों तरफ या फिर पेड़ों को जंगल से काटकर लाने के बाद घर के पास जानवरों का चारा (लूटा बनाकर) इकट्ठा किया जाता है इसके अलावा गेहूँ के नलुवा को भी इकट्ठा किया जाता है जिसके लिये प्रति परिवार 6–7 पेड़ अर्थात वर्ष में 12–13 सौ पेड़ काटते हैं।
4. जाड़े के मौसम में कमरा गरम करने व ईंधन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये ग्रामवासियों द्वारा छोटे–2 पेड़ पौधों व वनस्पतियां को जड़ से तथा बड़े पेड़ों की टहनियां को काटा जाता है जिससे पंचायती वनों में स्वतः उगने वाले पेड़ पौधें लुप्तप्राय होते जा रहे हैं इसके अलावा बरसात में जलाऊ लकड़ी के लिये चीड़ व अन्य वनस्पति के 1–2 पेड़ प्रति परिवार द्वारा पंचायती वनों से काटे जाते हैं।
5. पर्वतीय क्षेत्र में शादी–विवाह जैसे संस्कार में चीड़ के छोटे पेड़ के चारों तरफ फेरे लगाने का रिवाज है जिसके लिये वन पंचायत से पेड़ों को काटा जाता है।
6. सामान्यतया गांव के कृषकों द्वारा जाड़े व गर्मी के मौसम में जानवरों के बिछौने के लिये चीड़ व अन्य वनस्पति के सूखे पत्तों का इस्तेमाल किया जाता है लेकिन बरसात के मौसम में खेती के लिये अच्छी खाद बनाने के लिये हरी पत्तियों को काटकर अनेक वनस्पतियों का विदोहन किया जाता है।
7. गांव की भौगोलिक स्थिति व दुर्गम रास्तों के कारण गांव के लोग पंचायती वन के सीमावर्ती क्षेत्र में उपलब्ध इमारती लकड़ी व कृषि औजार बनाने वाले पेड़ों का उपयोग करने से वंचित रहते है जबकि सीमावर्ती गांव के लोगों द्वारा इनका अन्धाधुंध कटान किया जाता है। इसके साथ–2 गांव के दबंग व बेरोजगार युवकों द्वारा भी

चोरी छिपे वन उत्पादों की बिक्री स्वलाम के लिसे की जाती है। पड़ौसी गांव के लोगों द्वारा वन पंचायत क्षेत्र में जानवरों को चराने से भी नये पौधों को उगने व पनपने की समस्या होती है। पड़ौसी गांवों से सीमा विवाद के कारण भी पंचायत वन पर अवैध कटान होते रहता है।

8. यद्यपि बढ़ती जनसंख्या के दबाब के कारण व शादी विवाह एवं अन्य सांस्कृतिक व धार्मिक कार्यो की सुविधा हेतु गांव गडेरा की जनता दो धड़ों में बंटी थी लेकिन समय–समय पर होने वाले ग्राम पंचायत के चुनावों ने इन धड़ों को पक्ष विपक्ष में बॉट दिया। आज यदि एक पक्ष के लोग पंचायती वनों का कटान करता है तो दूसरे पक्ष के लोग वन कटान के साथ पंचायती वन भूमि में कब्जा करने को तत्पर रहते हैं। यदि क्रिया लगभग 15–20 वर्षो से जारी है आज इसी का प्रतिफल है कि कुछ पंचायती वन भूमि में घेराबन्दी करके अपने निजी वन बनाये हैं जबकि गांव के अन्य लोग उसमें प्रवेश भी नहीं कर सकते हैं। आम जनता की यह स्थिति बनी हुई है कि वे अपने जानवरों को पंचायती वन में चराने को असमर्थ है क्योंकि गांव से दूर स्थित पंचायती वन में जानवरों को ले लाने के रास्ते अतिक्रमण के कारण बन्द हैं

9. सन् 1977–78 के दौरान एक निजी खनन ठेकेदार द्वारा ग्राम गडेरा की पंचायती वन भूमि पर खनन लीज स्वीकार करा ली थी गांव की ग्राम सभा को मात्र 1500/–रूपया वार्षिक मुआवजा तथा पंचायत सदस्यों को मुंशी मैनेजर बनाने के प्रलोभनों के अलावा जो भी ग्रामीण खनन क्षेत्रा जाता था उसको 10/– रूपया दैनिक मज़दूरी दी जाने लगी थी चाहे वह कार्य करे या नही। गांव के शिक्षित व समझदार लोगों ने तथा उस समय के वन पंचायत सरपंच व सदस्यों ने इसका प्रबल विरोध किया जबकि ग्राम पंचायत बेरोजगारों को रोजगार देने की दुहाई देती थी। दो–तीन माह में वन पंचायत सदस्यों, गांव के शिक्षित तथा विभिन्न बाहरी ऐच्छिक संगठनों के सदस्यों ने गांव के लोगों के घर–घर में जाकर खनन से होने वाले हानियों से अवगत कराया। यद्यपि पूरी सरकारी मशीनरी खनन मालिक के पक्ष में थी लेकिन गांव की अधिकतर स्त्रियां, पुरूष व बुर्जग खनन के विरोध में डट कर खड़े हो गये और खनन कार्य रोक दिया गया। उस समय गांव के लोगों ने आन्दोलन में एक होकर यह दिखा दिया कि कोई बाहरी व्यक्ति गांव की वन पंचायत में उपलब्ध संसाधनों पर ऑख उठाने की हिम्मत न करे। यद्यपि खड़िया खनन विरोध से खनन कार्य बन्द हो गया लेकिन वन पंचायत व ग्राम वासियों के लिये यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि जिस वन पंचायत के वनों को बचाने के लिये अधिकतर ग्रामवासियों ने सफल आंदोलन किया उस वन क्षेत्र में आज निजी व्यक्तियों का कब्जा हो गया है।

10. यद्यपि वर्तमान समय में गांव की वन पंचायत द्वारा समय समय पर बैठकें आयोजित की जाती है और ग्रामवासियों के लिये चारे की पत्तियों वाले वृक्षों व कच्ची इमारती लकड़ियों के वृक्षों को काटने की मनाही है और बांज व चीड़ के वृक्षों की सुरक्षा के लिये मौसमी चौकीदार की नियुक्ति की जाती है लेकिन वन पंचायत की सम्पत्ति पर नुक़सान करने वाले व्यक्तियों की संख्या में कमी नहीं हो रही है। यदि कोई व्यक्ति वन पंचायत के वृक्षों को बिना अनुमति काटते है तो पंचायत द्वारा उसको दण्डित करने के लिये नोटिस भेजी जाती है लेकिन

नुकसान करने वाले व्यक्ति सरपंच व पंचायत सदस्यों से जवाबी प्रश्न करते है कि यदि हमने एक बोझ बांज की पत्तियां काटी तो पंचायत 50 रूपया जुर्माना करती है लेकिन जिन लोगों ने आधी वन पंचायत की ज़मीन व पेड़ों पर कब्जा किया है उसके लिये पंचायत का क्या विधान है? इन लोगों के तर्कों में पंचायत कार्यकारिणी भी बौनी हो जाती है और वन कटने नहीं थमते हैं।

11. गांव में बने पक्ष विपक्ष के कारण वन पंचायत सदस्य भी जहां एक ओर पक्ष विपक्ष में बंटे हैं वहीं दूसरी ओर वन पंचायत के नियमों व प्राविधानों का ज्ञान न होने के कारण हमेशा अपने पारिवारिक सदस्यों को नुकशान करने पर भी दण्ड से बचाने की कोशिश करते हैं।

12. गांव की वन पंचायत ने कुछ वर्षो पूर्व वन पंचायत के माध्यम से जुर्माना वसूलने का प्रयास किया लेकिन इन कर्मचारियों द्वारा जुर्म की राशि से अधिक वसूली की गयी जिसके कारण ग्रामवासी पंचायत सदस्यों से ईर्ष्या रखने के साथ–2 अपने पक्ष से बाहर करने की अफवाह चलाते हैं जिस कारण सरपंच जैसा व्यक्ति भी पंचायती वनों को कटने से बचाने में असफल रहता है।

13. पंचायती वनों पर हो रहे अत्यधिक अतिक्रमण व निजीकरण की प्रक्रिया से दुखी होकर वन पंचायत ने 8–10 वर्ष पूर्व गांव के सभी लोगों को ढोल–नगाड़ों के साथ वन पंचायत में ले जाकर पंचायती वन के सीमावर्ती क्षेत्र व अन्य जगहों पर लाल झण्डे लटका दिये व पूरी वन पंचायत की जमीन व वन को कुछ वर्षों के लिये माँ भगवती को समर्पित कर दिया यद्यपि 2–3 वर्ष तक पंचायती वन अतिक्रमण व विदोहन से बचे लेकिन गांव के गरीब व निर्धन लोगों के पास अन्य विकल्प न होने पर आज उनका विदोहन जारी है, अलबत्ता यदि वन पंचायत में नुकसान करने वाला व्यक्ति यदा–कदा बीमार होता है तो उसे दैवी प्रकोप मानकर बकरे की बलि दे रहे हैं।

<u>पंचायती वन पर अतिक्रमण का प्रभाव :</u>

यद्यपि किसी भी स्थान विशेष पर अतिक्रमण स्वलाभ के लिये होता है लेकिन ग्राम गडेरा के पंचायती व सिविल भूमि पर अतिक्रमण करने से स्वयं अतिक्रमणकर्ता भी प्रभावित हुए है और उनके कष्टों में अत्यधिक वृद्धि हुई है। आज अतिक्रमण वाली वन भूमि में जो खेती की जा रही है बस्ती से दूर होने के कारण उसमें खाद बीज की मात्रा सही ढंग से नहीं पड़ पाती है जबकि स्त्रियों को दूर–2 तक गोबर की खाद को ढोना पड़ रहा है और फसल पकने पर जंगली जानवर उसमें नुकसान पहुंचाते हैं जिस कारण कृषकों के अनाज उत्पादकता में कमी आयी है।

पंचायती वनों के कटने व घास पालने की परम्परा खतम होने के कारण स्त्रियों को आज सिर बोझ लकड़ी व घास के लिये मीलों दूर स्थित सरकारी जंगलों में जाना पड़ रहा है। जबकि अतिक्रमण करके निजी वन बनायें लोग इन कष्टों से प्रभावित नहीं हुए है। पंचायती वन तक जानवरों को चराने ले जाने का रास्ता न होने के कारण लोग गौ वंशीय जानवरों कि संख्या में कमी ला रहे हैं। जो परिवार दूध बेचकर अपना परिवार पालते थे आज वन कटने से उनके सामने

भी रोजी रोटी की समस्या खड़ी हो रही है, ग्रामवासियों के लिये इमारती लकड़ी का अभाव होते जा रहा है जहाँ गांव के धनी वर्ग द्वारा विकल्प के रूप में सीमेंट का उपयोग किया जा रहा है वहीं गरीब तबके के लोगों को सरकारी वन से चोरी–छिपे इमारती लकड़ी हासिल करनी पड़ रही है। जो लोग पंचायती वन से लकड़ी चीरकर अपना जीवनयापन करते थे आज उनको भी बेकार होना पड़ा है।

पंचायती वन से 15–20 वर्ष पूर्व तक जो काफल, हिसालू, किरमड़, अखरोट, घींघारू, शहतूत व मेहल जैसे फल तथा लैंकुड़ा व तरूण जैसी सब्जियों के साथ साथ बांज, फल्यांड़, तिमुल, दुदिल व क्वेरालू जैसे पशु चारे के वृक्ष उपलब्ध होते थे आज उनका अभाव हो गया है। पंचायती व सिविल वनों में किये गये अतिक्रमण के कारण आज गांव में मकान बनाने के पत्थरों का भी अभाव होते हा रहा है लोग अब गांव में शेष बचे नाले व गधेरों के पत्थरों पर घेराबन्दी करने को आतुर है। आज सरकारी विभाग द्वारा भी जो वनीकरण या भूमि संरक्षण की योजनायें चल रही है वे कागजी हैं क्योंकि जब गांव मे अधिकतर भूमि पर अतिक्रमण हो गया है तो वनीकरण कहां सम्भव होगा। आज लोगों के अतिक्रमित क्षेत्र में दो चार पेड़ लगाकर व उन्हीं की दीवाल में 2–4 पत्थर रखकर योजनाओं के कार्यान्वयन की इतिश्री की जा रही है।

निष्कर्ष व सुझाव :

सामान्यतया पंचायती व सिविल वन ही है जो ग्रामीण लोगों को शुद्ध जल, जलाऊ व इमारती लकड़ी, पशुओं का चारा, अनेक फल व सब्जियां तथा जड़ी बूटियां प्रदान करते हैं। इसके साथ साथ ग्रामीण लोगों में संयुक्त व प्रजातांत्रिक तरीके से प्रबन्ध की भावना का विकास, लोगों को बराबरी का हक पाने व पर्यावरण की शिक्षा पंचायती वनों से ही मिलती है। लेकिन जनसंख्या के बढते दबाव, बेरोजगारी, निर्धनता, गांव में बने पक्ष व विपक्ष, पंचायत सदस्यों की अज्ञानता, विवशता निर्भीक तथा स्वतंत्र होकर न्याय न कर पाने की अक्षमता और अतिक्रमण किये वन भूमि को छुड़ाने में दबंगों के सामने आत्मसर्मपण, सरकारी पक्ष से अपेक्षित सहयोग न होना, लोगों का अशिक्षित होना तथा पहले लोग पारम्परिक नियमों से बंधे थे अब उनका टूटना, गरीब तबके के द्वारा अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिये वन विदोहन अनिवार्य होने के कारण ग्राम गडेरा के पंचायती वन में निजीकरण की प्रक्रिया जारी है और वर्तमान में वन पंचायत की लगभग तीन चौथाई भूमि / बरसात में पानी बहने वाले नाले व गधेरे ही शेष बचे है। जहाँ एक ओर पंचायती वनों में अतिक्रमण व निजीकरण का क्रम जारी है वहीं दूसरी ओर मकान बनाने के पत्थरों के लिए नालों व गधेरों में अतिक्रमण करने के लिये बहस व सुगबुहाट शुरू हो गयी है। जिससे निकट भविष्य में जहाँ एक ओर सामाजिक वैमनस्यता फैलने की सम्भावना है वहीं दूसरी ओर गांव के गरीब वर्ग व स्त्रियों का जीवन अधिक कष्टकारी होते जा रहा है। यद्यपि यह विवेचन ग्राम गडेरा की वन पंचायत को ध्यान में रखकर किया गया है लेकिन व्यवहार में उत्तरांचल में अधिकतर वन पंचायतों की लगभग यही स्थिति है।

यह सकारात्मक होगा कि समय रहते इन समस्याओं का समाधान खोजा जाय ताकि आने वाली पीढ़ी वन पंचायतों को अभिशाप न समझकर पूर्व की भांति वरदान समझकर पंचायती वनों का लाभ ले सके। अतः उपरोक्त समस्याओं के समाधान हेतु कुछ सुझाव देना तर्कसंगत होगा।

1. गांव के गरीबों, स्त्रियों अथवा सम्पूर्ण गांव के सर्वांगीण विकास के लिये सर्वप्रथम सिविल व पंचायती वन तथा भूमि पर किये गये अतिक्रमण को हटाना अनिवार्य होगा यह कार्य ग्रामीणों को समझाने व कानूनी भय से ही सम्भव हो सकता है उसके बाद अतिक्रमित सिविल भूमि को वन पंचायत में शामिल किया जाना चाहिए।

2. अतिक्रमण हटाने के पश्चात पंचायती वन का सीमांकन करना उचित होगा क्योंकि कई पीढ़ियों पहले किये गये सीमांकन को आज की युवा पीढ़ी भी समझ सके। सीमांकन के बाद कुछ भाग में जानवरों को चराने की सुविधा व कुछ भाग में चारे व ईंधन के वन लगने चाहिए और शेष भाग में घास पालकर प्रति परिवार एक व्यक्ति को घास काटने की छूट मिलनी चाहिए ताकि सभी परिवार समान रूप से इसका लाभ ले सकें।

3. यह भी सकारात्मक होगा कि वन पंचायत सदस्यों को वन अधिनियमों व पंचायती वनों के महत्व को समझाया जाय और कुशल प्रबन्ध के लिये उनको प्रशिक्षण दिया जाय।

4. अभी तक वन पंचायत जिलाधिकारी व परगनाधिकारी के नियंत्रण में कार्य करते है लेकिन ये लोग पंचायतों की तरफ कम ध्यान दे पाते हैं अतः पंचायतों को स्वायत संस्था के रूप में कार्य करने का अवसर मिलना चाहिए।

5. गांव में स्थित ग्राम पंचायत व वन पंचायत में सामन्जस्य होना भी सकारात्मक होगा क्योंकि गांवो में विरोधाभास देखने को मिलता है और दोनों संस्थायें अपने कार्यक्षेत्र व अधिकार क्षेत्र के सम्बन्ध में विवाद पैदा करते रहते हैं।

6. लोगों को वन व पर्यावरण के सम्बन्ध में जागरूक व शिक्षित करना भी आवश्यक होगा। क्योंकि आज गांव का लगभग प्रत्येक व्यक्ति ईंधन व चारे के अत्यधिक विदोहन व कुप्रबन्ध से ग्रसित है।

7. वन पंचायत प्रबन्ध कार्यकारिणी में अभी तक स्त्रियों की भागीदारी नहीं रही है जबकि स्त्रियां वन आधारित समस्याओं का अधिक ज्ञान रखती है। अतः पंचायत में स्त्रियों को आरक्षण की सुविधा होनी चाहिए ताकि वे पंचायती वनों के बचाव के सम्बन्ध में सहयोग दे सकें।

8. गांव के निर्धन परिवार अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण वन पंचायत नियमों को तोड़ रहे हैं अतः अतिक्रमण हटाने तक इन परिवारों को ही पंचायत वन में उपलब्ध चारे व ईंधन वाले वृक्षों को काटने की अनुमति हो क्योंकि जिन लोगों ने निजी वन बनाये हैं वे लोग उन वनों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।

9. साधारणतया चौकीदार को जानवरों के चारे वाले वृक्षों की सुरक्षा के लिये एक विशेष मौसम में ही लगाया जाता है लेकिन पंचायंती वनों का विदोहन वर्ष भर होते रहता है अतः चौकीदार को वर्ष भर के लिये नियुक्त करना चाहिए और चौकीदार को वेतन देने के लिये सरकार को वन पंचायतों को आर्थिक सहायता देनी चाहिए।

10. वन विभाग को वन पंचायतों के संरक्षण के लिये समय–2 पर राय देनी चाहिए।

11. वन पंचायत की भूमि व वनों पर अतिक्रमण करने वाले व्यक्ति को सख्त से सख्त सज़ा देने का प्राविधान होना चाहिए और जो व्यक्ति वन पंचायत के वनों पर जुर्म करने पर दण्ड नहीं भरते है उनको भी कठोर सज़ा मिलनी चाहिए क्योंकि दण्ड वसूली ज़ब्त हथियारों व अन्य सामान की नीलामी से ही पंचायत की आय होती है।

12. गांव के लोगों में सामूहिक वनीकरण की भावना विकसित करना भी आवश्यक होगा जिसमें गांव में स्थित युवा केन्द्र मुख्य भूमिका निभा सकते है और पंचायत सदस्यों के सामाजिक दबाव को भी इन केन्द्रों के माध्यम से दूर किया जा सकता है।

13. वन पंचायत इन्सपेक्टर को समय–समय पर पंचायती वनों में भ्रमण करते रहना चाहिये इससे जहाँ वनों पर नुकसान करने वाले डरे व सहमें रहेंगे वहीं दूसरी ओर लोगों का पंचायती वनों पर विश्वास बढ़ेगा और वनों के बचाव में उनकी भागीदारी बढ़ेगी।

सन्दर्भ

1. आई0 डी0 पाण्डे 'मैनेजमेंट ऑफ कॉमन प्रापर्टी : वन पंचायत इन यू0 पी0 हिमालयाज : पेपर प्रजेन्टेड इन सेमीनार ऑन मैनेजमेंट ऑफ कॉमन प्रॉपर्टी लैण्ड रिर्सोस इन यू0 पी0 एट नैनीताल ऑन 6–7 नवम्बर, 97.

2. समीर पाण्डे 'सस्टेनेवल मैनेजमेंट ऑफ कॉमन प्रॉपर्टी रिर्सोसेज इन कुमायूँ', सेमीनार पेपर (सन्दर्भ–1).

3. सी0 शास्त्री 'ग्रास रूट इन्स्टीट्यूशन्स फॉर रिर्सोस मैनेजमेंट : इक्जामाइनिंग वन पंचायट्स फॉर गवर्नमेंट ग्रासरूट इन्स्टीटूशन कौलोवरेशन', उत्तराखण्ड, उत्तरांचल 2, 1993.

4. गुहा, रामचन्द्र 'ब्रिटिश कुमायूँ में वन व्यवस्था और वनान्दोलन, पहाड़–2, 1986.

5. प्रताप सिंह गढ़िया 'उत्तरांचल क्षेत्र में निर्वनीकरण और ग्रामीण स्त्रियों की समस्यायें', वर्किंग पेपर नं0 122, गिरि विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ, 1996.

6. प्रताप सिंह गढ़िया 'वन एवं पर्यावरण, हिमालय निवासी और निसर्ग', वर्ष 8, अंक 4, दिसम्बर, 1984

7. विश्व बल्लभ एण्ड कतार सिंह 'वन पंचायत इन यू0 पी0 हिल्स, ए क्रीटिकल एनालीसिस', रिसर्च पेपर नं02, इन्स्टीट्यूट ऑफ रूरल मैनेजमेंट आनन्द, सितम्बर, 1988.

8. कतार सिंह 'मैनेजिंग कॉमन रिर्सोसेज, प्रिसिन्पल एण्ड केस स्टडी', ऑक्सफोर्ड प्रेस, बम्बई, 1994.

9. रामचन्द्र गुहा (1985) 'फारेस्ट्री एण्ड सोशल फारेस्ट इन कुमायूँ गुहा (एडि0) सबल्टन स्टडीज़ IV', न्यू आक्सफॉर्ड यूनिर्वसिटी प्रेस।

10. गोविन्द बल्लभ पंत (1922) 'द फारेस्ट प्राबल्म्स इन कुमायूँ' ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल

11. आशुतोष जोशी, पूर्णानन्द पाण्डे (1993) 'द इम्पैक्ट ऑफ फारेस्ट पॉलिसी ऑन द रूरल पॉपुलेशन इन उत्तराखण्ड रीजन', उत्तरांचल–2, लखनऊ।